५६४. सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१९॥

सहार्थेन युक्तेऽप्रधाने तृतीया स्यात्।

पुत्रेण सहागतः पिता। एवं साकंसार्धंसमंयोगेऽपि।

विनापि तद्योगं तृतीया, 'वृद्धो यूना-' (सू.९३१) इत्यादिनिर्देशात्।

सहयुक्तेऽप्रधाने। सहेन युक्तः सहयुक्तस्तस्मिन् सहयुक्ते, तृतीयातत्पुरुषः। न प्रधानमप्रधानं तस्मिन् अप्रधाने। सहयुक्ते सप्तम्यन्तम्, अप्रधाने सप्तम्यन्तम्। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है।

सह तथा सहार्थक शब्दों के योग में क्रिया से अन्वित होते हुए भी जो अप्रधान हो, उससे तृतीया विभक्ति होती है।

युक्त शब्द के द्वारा **वाचक** अर्थ गृहीत होता है। फलतः **सहयुक्ते** का अर्थ है- सहार्थक शब्दों के योग में। सूत्र में **सहेन** इतना पढ़ते और **युक्त** शब्द का ग्रहण न करते तो भी **सहयोगे** अर्थ तो प्राप्त ही हो जाता, फिर भी **युक्त**-ग्रहण किया गया है, इसका तात्पर्य है कि यहाँ केवल सह-शब्द नहीं अपितु सहार्थवाची शब्द सभी यहाँ गृहीत होते हैं। प्रधान और अप्रधान का निर्णय यहाँ पर क्रिया के साथ अन्वय से होता है। क्रिया के साथ आर्थिक सम्बन्ध होते हुए शब्द-सम्बन्ध भी जिसका होता है, उसे प्रधान और तद्भिन्न अप्रधान।

पुत्रेण सहागतः पिता। पुत्र के साथ आया हुआ पिता। यहाँ पर **पिता** की प्रधानता है, क्योंकि मुख्य रूप से आगमन उसका हो रहा है और उसका क्रिया के साथ शाब्दिक और आर्थिक दोनों सम्बन्ध है। यहाँ **पुत्र** की अप्रधानता है, क्योंकि वह पिता के आगमन का साथी है, अतः उसका क्रिया के साथ अन्वय अर्थतः किया जाता है। **सह** शब्द का योग है। अतः अप्रधान **पुत्र** शब्द में तृतीया होकर **पुत्रेण** बन जाता है।

एवं साकंसार्धंसमंयोगेऽपि। ऊपर बताया गया था कि प्रकृतसूत्र के **युक्त** शब्द से सह-शब्द के अर्थ वाले शब्दों का भी ग्रहण होता है। अतः सहार्थक **साकम्, सार्धम्, समम्** आदि शब्दों के योग में अप्रधान में तृतीया होती है। अतः **शिष्येण साकं गुरुर्गतः, मित्रेण सह रामः पठति** इत्यादि वाक्य बन जाते हैं।

विनापि तद्योगं तृतीया, 'वृद्धो यूना-' इत्यादिनिर्देशात्। सह अथवा सहवाची शब्दों के योग के बिना भी तृतीया विभक्ति होती है। इसमें सूत्रकार का **वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः** सूत्र ज्ञापक है। पाणिनि जी ने उक्त सूत्र में **सह** शब्द का प्रयोग किये बिना ही **युवन्** शब्द से तृतीया करके **यूना** शब्द का प्रयोग किया है। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य को **सह** शब्द के शाब्दिक योग के बिना भी तृतीया विभक्ति इष्ट है। ऐसे स्थलों पर अर्थ बनाते से समय **सह** शब्द का अध्याहार किया जाता है। भले ही सह-शब्द और सहार्थक शब्दों का योग न हो, किन्तु सहार्थ की विद्यमानता तो होनी ही चाहिये। सह-शब्द के बिना सहार्थ की विद्यमानता में तृतीयाविभक्ति का प्रमाण भी उक्त सूत्र ही है।

५६५. येनाङ्गविकारः २।३।२०॥

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततः तृतीया स्यात्।

अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः।

अङ्गविकारः किम्? अक्षि काणमस्य।

येनाङ्गविकारः। अङ्गानि अस्य सन्तीति अङ्गं शरीरम्, अङ्ग-शब्द से **अर्शआदिभ्योऽच्** सूत्र के द्वारा मतुबर्थ अच् प्रत्यय होकर **अङ्ग** शब्द निष्पन्न होता है। अङ्गस्य विकारोऽङ्गविकारः, षष्ठीतत्पुरुषः। येन तृतीयान्तम्, अङ्गविकारः प्रथमान्तम्। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है।

जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार लक्षित होता है, उसके वाचक शब्द से तृतीया होती है।

यहाँ **येन** पद के साथ **अङ्गेन** इस पद का अध्याहार किया जाता है। इसके अतिरिक्त अङ्ग-शब्द में मतुबर्थक **अच्** प्रत्यय होने के कारण **अङ्ग** शब्द से अङ्गी शरीर का ग्रहण होता है। अतः जिस विकारयुक्त अङ्ग (शरीरावयव) के द्वारा **अङ्गी**=शरीर में विकार (अंगविकार) अभिलक्षित हो, उस अङ्गवाचक शब्द में तृतीया की जाती है।

अक्ष्णा काणः। अक्षिसम्बन्धिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः। आँख से काना है। यहाँ नेत्रसम्बन्धी काणत्व से युक्त है, ऐसा अर्थ है। यहाँ काणत्व विकार है। यह विकृत अङ्ग (अक्षि) के द्वारा लक्षित होता है। अंगविकार से अंगी शरीर को या व्यक्तिविशेष को ही **काना** कहा जाता है। वस्तुतः काणत्व धर्म आँख का है, व्यक्ति का नहीं तथापि उस विकार के कारण पूरे शरीर का विकारयुक्त कानापन परिलक्षित हो रहा है। अतः सूत्रार्थ पूरा का पूरा घटित हो रहा है। फलतः अंगवाचक **अक्षि** शब्द में **येनाङ्गविकारः** सूत्र से तृतीया विभक्ति होकर एकवचन में **अक्ष्णा** बन गया है। इसी तरह **पाणिना कुणिः** हाथ से लूला है), **पादेन खञ्जः** (पैर से लंगड़ा है), **शिरसा खल्वाटः** (सिर से गंजा है), **पृष्ठेन कुब्जः** (पीठ से कुबड़ा है) **कर्णाभ्यां बधिरः** (कान से बहरा है), **शरीरेणातिस्थूलः** (शरीर से अतिमोटा है) इत्यादि जगहों पर भी समझना चाहिये।

अङ्गविकारः किम्? अक्षि काणमस्य। सूत्र में **अङ्गविकारः** पद का प्रयोजन है कि अङ्गी अर्थात् देह का विकार लक्षित होने पर ही विकृत अङ्गवाचक शब्द से तृतीया हो अन्यथा न हो। **अक्षि काणमस्य** इसकी आँख कानी है, इस वाक्य में अङ्गी का विकार परिलक्षित न होकर केवल अङ्गविकार, नेत्रविकार ही परिलक्षित है, अर्थात् अङ्गी का विकारी के रूप में कथन नहीं हो रहा। अतः तृतीया नहीं होती। प्रथमान्त रूप है- **अक्षि।**

५६६. इत्थम्भूतलक्षणे २।३।२१॥
कञ्चित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया स्यात्।
जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः।

इत्थम्भूतलक्षणे। अयं प्रकारः इत्थम्, तं भूतः=प्राप्तः इत्थम्भूतः। लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं ज्ञापकम्। इत्थम्भूतस्य लक्षणम् इत्थम्भूतलक्षणं, तस्मिन् इत्थम्भूतलक्षणे, षष्ठीतत्पुरुषः। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है।

'वह इस प्रकार का है'-इस प्रकार कथन में लक्षणवाची शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

जिस चिह्न=ज्ञापक के द्वारा किसी की पहचान होती हो, उसके वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति की गयी है। पहचान ही लक्षण है। **इत्थम्भूतः** में चुरादि की **भू प्राप्तौ** धातु से क्त प्रत्यय हुआ है। अतः **इत्थम्भूत** का अर्थ होता है- इस अवस्था को प्राप्त।

जटाभिस्तापसः। जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः। जटाओं से लगता है कि यह तपस्वी है। यहाँ जटा से ज्ञाप्य जो तापसत्व, उससे युक्त होना अर्थ है। **जटा** लक्षण है। इसके द्वारा व्यक्ति का तापसत्व लक्षित हो रहा है। अतः **तापसत्व** इत्थम्भूत है। अतः इत्थम्भूत का ज्ञापक **जटा** शब्द से **इत्थम्भूतलक्षणे** सूत्र के द्वारा तृतीया विभक्ति होकर **जटाभिस्तापसः** वाक्य बन जाता है।

इस सूत्र से तृतीया होने पर उसका अर्थ होगा- लक्ष्यलक्षणभाव, अन्यथा तापस के ज्ञान में जटा के करण होने से करणत्वात् तृतीयाविभक्ति सिद्ध है। यदि लक्षण का साक्षात् कथन नहीं होगा तो तद्वाची शब्द से तृतीया विभक्ति नहीं होती है। जैसे कि **कमण्डलुपाणिश्छात्रः।** यहाँ पाणिस्थ कमण्डलु के द्वारा व्यक्ति का छात्रत्व लक्षित तो होता है परन्तु लक्षण का समास में अन्तर्भाव हो जाने से यहाँ लक्षण का कथन नहीं है, अपितु सामान्यकथन है। अतः लक्षणवाची कमण्डलु शब्द से तृतीया नहीं दीखती। इसी तरह **वेषेण साधुः, कमण्डलुना छात्रः, हलेन कृषकः, यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, शिखया द्विजः, दण्डेन परिव्राजकः, पत्न्या गृहस्थः, पुत्रेण पिता** इत्यादि जगहों पर भी समझना चाहिये।

५६७. सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २।३।२२॥
सम्पूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा स्यात्।
पित्रा पितरं वा संजानीते।

सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि। सम्-पूर्वो ज्ञा सञ्ज्ञा, तस्य सञ्ज्ञः। सञ्ज्ञः षष्ठ्यन्तम्, अन्यतरस्याम् विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम्। कर्मणि सप्तम्यन्तम्। **अनभिहिते** का अधिकार है और **कर्तृकरणयोस्तृतीया** सूत्र से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है।

सम्पूर्वक ज्ञा धातु के अनुक्त कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है।

यहाँ सम्पूर्वक **ज्ञा अवबोधने** धातु का ग्रहण है और सोपसर्गक उक्त धातु का अर्थ है- **ठीक से पहचानना।** अधिकृत **अनभिहिते** का **कर्मणि** के साथ अन्वय है। **अन्यतरस्याम्** विकल्पार्थक है। पक्ष में यथाप्राप्त द्वितीया होती है।

पित्रा पितरं वा सञ्जानीते। पिता को ठीक से पहचानता है। **बालकः** आदि कर्तृपद का अध्याहार करना चाहिये। सम्पूर्वक **ज्ञा** धातु से **सम्प्रतिभ्यामनाध्याने** से आत्मनेपद होकर **सञ्जानीते** बना है। **पितृ** शब्द की **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** से कर्मसंज्ञा है और कर्ता में लट् लकार होने के कारण तिङ् से कर्ता उक्त है। अतः कर्म अनुक्त बन गया है। **सञ्ज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि** सूत्र से विकल्प से **पितृ** शब्द में तृतीयाविभक्ति होने पर **बालकः पित्रा सञ्जानीते** वाक्य बनता है। तृतीया वैकल्पिक है, न होने के पक्ष में **कर्मणि द्वितीया** से कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर **बालकः पितरं सञ्जानीते** यह वाक्य बन जाता है।

५६८. हेतौ २।३।२३॥

हेत्वर्थे तृतीया स्यात्।

द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। दण्डेन घटः। पुण्येन दृष्टो हरिः। फलमपीह हेतुः। अध्ययनेन वसति।

'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका'। अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः।

'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' (वा.५०४०)। दास्या संयच्छते कामुकः। धर्म्ये तु भार्यायै संयच्छति।

॥ इति तृतीया॥

हेतौ इति सप्तम्यन्तमेकपदं सूत्रम्। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से **तृतीया** की अनुवृत्ति आती है।

हेतु-वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

करण अर्थ में तृतीयाविभक्ति का प्रकरण चल रहा था किन्तु **हेतौ** शब्द से पुनः विधान करने से यह सूचित होता है कि **करण** और **हेतु** इन शब्दों में अर्थ का अन्तर है। **हेतु** शब्द का सामान्यः अर्थ **कारण** होता है किन्तु याहँ शास्त्र में आगे **तत्प्रयोजको हेतुश्च** सूत्र से प्रयोजक की भी हेतुसंज्ञा होती है। प्रकृतसूत्र में इन दोनों हेतु के प्राप्त होने पर समाधान दिया जाता है कि प्रयोजकार्थक हेतु की कर्तृसंज्ञा भी होने से उसमें कर्तृतृतीया स्वतः सिद्ध है, अतः यहाँ कारणार्थक हेतु ही लिया जाता है। अब यहाँ हेतु और करण में अन्तर क्या है? मूलकार आगे बता रहे हैं-

द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्। यहाँ **द्रव्यादिसाधारणम्**= द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों का साधक और **निर्व्यापारसाधारणं च**=जिस हेतु में व्यापार हो भी न भी हो, वह हेतु होता है। कोई भी कारणता द्रव्य, गुण या क्रिया के प्रति ही होती है और दूसरी बात हर कारण सव्यापार ही नहीं होता अर्थात् निर्व्यापार भी रहता है। ऐसे में जो द्रव्य, गुण और क्रिया के प्रति सव्यापार अथवा निर्व्यापार होते हुये कारण बनता है, उसे यहाँ हेतु-शब्द से कहा गया है। वैशेषिकों के मत में स्वीकृत सात पदार्थों में से प्राथमिक तीन पदार्थों का साधक हेतु होता है।

करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च। जो केवल क्रियायुक्त सव्यापार होता है, उसे करण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसकी कारणता केवल क्रिया के प्रति ही रहती है और वह हमेशा सव्यापार ही रहे तो उसे यहाँ करण-शब्द से कहा गया है। यह यद्यपि हेतु ही है तथापि उसके एक भाग के रूप में गृहीत होने के कारण हेतु से भिन्न रूप में करण कहा गया है। द्रव्य के प्रति कारण भी यदि सव्यापार हो तो उसे करण नहीं कहा जाता और गुण के प्रति भी।

इस तरह **हेतु** और **करण** का भेद स्पष्ट हो जाता है। हेतु से करण का ग्रहण हो सकता है किन्तु करण से हेतु का ग्रहण नहीं होता, क्योंकि हेतु व्यापक और करण उसका व्याप्य है। अत एव अर्थ में अन्तर होने के कारण **करण** मात्र से काम नहीं चल रहा था, सो **हेतौ** सूत्र के द्वारा तृतीयाविभक्ति का विधान किया गया।

दण्डेन घटः। दण्ड से घड़ा (बनता है)। यहाँ **द्रव्य के प्रति हेतु** का उदाहरण दिया जा रहा है। यहाँ घट के बनने में दण्ड हेतु है और दण्ड द्रव्य है और वह क्रियाशील भी है, क्योंकि उससे चाक घुमाया जाता है। इस प्रकार यह दण्ड घटरूप द्रव्य के प्रति सव्यापार हेतु है। अतः हेतुभूत **दण्ड** में **हेतौ** सूत्र से तृतीया होकर **दण्डेन घटः** सिद्ध हो जाता है।

पुण्येन दृष्टो हरिः। पुण्य से हरि को देखा। यह **क्रिया के प्रति हेतु** का उदाहरण दिया जा रहा है। यहाँ पर **देखना** क्रिया का हेतु है और **पुण्य** निर्व्यापार है, क्योंकि वह स्वयं व्यापार है। हेतुभूत **पुण्य** में **हेतौ** सूत्र से तृतीया होकर **पुण्येन दृष्टो हरिः**

सिद्ध हो जाता है। **पुण्य** के निर्व्यापार होने के कारण यह **करण** नहीं बन सकता था, अतः **हेतौ** सूत्र की आवश्यकता है। इसी प्रकार गुण के प्रति हेतु का उदाहरण है- **क्रोधेन रक्तः।**

फलमपीह हेतुः। इस सूत्र में फल का अन्तर्भाव भी हेतु में होता है। यद्यपि फल क्रिया के बाद होता है एवं हेतु क्रिया से पहले रहता है तथापि व्याख्यानात् हेतु से फल अर्थ भी ग्रहण किया जाता है।

अध्ययनेन वसति। अध्ययन के लिये रहता है। फल को भी हेतु मान लेने के कारण **अध्ययन** शब्द में **हेतौ** सूत्र से तृतीया विभक्ति हो जाती है। गुरुकुल में निवास का फल अध्ययन है। यदि फल को हेतु नहीं मानते तो **अध्ययनेन** में तृतीया सम्भव नहीं थी, क्योंकि निवास क्रिया से साध्य होने के कारण **अध्ययन** को हेतु नहीं कहा जा सकता किन्तु वासक्रिय के द्वारा साध्य होने से **अध्ययन** फल है। हेतु की विवक्षा न करने पर वक्ष्यमाण **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या** वार्तिक से चतुर्थी विभक्ति भी हो जाती है- **अध्ययनाय वसति।**

'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका'। अर्थात् गम्यमान क्रिया भी कारकविभक्ति के लिये प्रयोजिका होती है। **गम्यमान** का अर्थ है- साक्षात् अप्रयुक्त होते हुये भी अर्थ के द्वारा प्रतीत होने वाला। व्यवस्था की जा रही है कि केवल साक्षात् प्रयुक्त क्रिया ही कारकविभक्ति का हेतु नहीं होती है, प्रत्युत यदि क्रिया का शाब्दिक प्रयोग न किया गया हो तथा अन्य किसी के द्वारा उस क्रिया की प्रतीति होती हो तो भी वह गम्यमान क्रिया कारकविभक्ति का हेतु होती है। श्रूयमाणक्रिया साक्षात्प्रयुक्त होती है और गम्यमान क्रिया प्रयुक्त हुये बिना ही प्रतीत होती है। तात्पर्य यह है कि यदि क्रिया का शाब्दिक प्रयोग न किया गया हो किन्तु वाक्यार्थ में उसकी प्रतीति हो रही हो तो वह वह गम्यमान क्रिया भी कारक विभक्ति के विधान के लिये निमित्त बन जाती है अर्थात् उस क्रिया को मानकर कारक की सिद्धि की जाती है।

अलं श्रमेण। श्रमेण साध्यं नास्तीत्यर्थः। इह साधनक्रियां प्रति श्रमः करणम्। श्रम व्यर्थ है। तात्पर्य यह है कि यह कार्य श्रम के द्वारा साध्य नहीं है। यहाँ **साधन** क्रिया है जो साक्षात् प्रयुक्त नहीं है किन्तु यह वाक्यार्थ से गम्यमान है। इस गम्यमान क्रिया के प्रति **श्रम** सर्वाधिक उपकारक है। अतः गम्यमान क्रिया को मानकर **श्रम** शब्द की करणसंज्ञा होती है और करण में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** सूत्र से तृतीया विभक्ति हो जाती है।

शतेन शतेन वत्सान् पाययति पयः। शतेन परिच्छिद्येत्यर्थः। सौ-सौ बछड़ों को अलग-अलग करके पानी पिलाता है। यहाँ विभाजन क्रिया अप्रयुक्त होने के कारण गम्यमान क्रिया है और उसके प्रति **शत** उपकारक होने के कारण **करण** है। अतः **शत** शब्द में तृतीया विभक्ति हो जाती है।

'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया'। यह वार्तिक है। **अशिष्ट** का अर्थ है जो धर्मानुकूल न हो अर्थात् जो अनैतिक हो। वार्तिकार्थः- **अशिष्टव्यवहारे**=जहाँ अनैतिक आचरण सूचित होता हो और **दाण्** धातु का प्रयोग हो तो वहाँ चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

दास्या संयच्छते कामुकः। कामुक पुरुष दासी को (धन) देता है। यहाँ **दा** धातु का प्रयोग है। दान अर्थ में **दासी** शब्द में **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** से सम्प्रदान होकर **चतुर्थी सम्प्रदाने** सूत्र से चतुर्थी प्राप्त होने पर उसे बाधकर **अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हो जाने से **दास्या** बन गया है। दासी को लुब्ध करने के लिये धन दिया जाना यहाँ कामवश अनैतिक आचरण गम्यमान है। **दाण्**-धातु के स्थान पर **पाघ्राध्मा०** सूत्र से **यच्छ** आदेश और **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे** से आत्मनेपद होकर **संयच्छते** बनता है।

धर्म्ये तु- भार्यायै संयच्छति। यदि धर्म्य अर्थ हो तो चतुर्थी के अर्थ में तृतीया नहीं होती। **धर्मादनपेतम्** अर्थ में **धर्म**-शब्द से **धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते** सूत्र से **यत्** प्रत्यय होकर **धर्म्य** शब्द बनता है। जो धर्मानुकूल हो उसे **धर्म्य**=शिष्टव्यवहार कहते हैं। शिष्टव्यवहार में उपर्युक्त वार्तिक नहीं लगता। अतः तृतीया न होकर चतुर्थी होने पर **भार्यायै संयच्छति** वाक्य बनता है। चतुर्थी के अर्थ में तृतीया न होने पर **दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे** से आत्मनेपद भी नहीं होता। अतः परस्मैपद होकर **संयच्छति** बना है।

इति तृतीया। तृतीयाविभक्ति के अर्थ का निरूपण पूर्ण हो जाता है। अब आगे चतुर्थी विभक्ति के अर्थ का निरूपण करते हैं।